३९ कर्म, विकर्म और अकर्म

☐ आचार्य विनोबा भावे

स्वधर्म को टालकर यदि हम अवान्तर धर्म स्वीकार करेंगे, तो निष्कामता-रूपी फल को अशक्य ही समझो। स्वदेशी माल बेचना व्यापार का स्वधर्म है परन्तु इस स्वधर्म को छोड़कर जब वह सात समुन्दर पार का विदेशी माल बेचने लगता है, तब उसके सामने यही हेतु रहता है कि बहुतेरा नफा मिले। तो फिर उस कर्म में निष्कामता कहाँ से आयेगी? अतएव कर्म को निष्काम बनाने के लिए स्वधर्म-पालन की अत्यन्त आवश्यकता है। परन्तु यह स्वधर्माचरण भी सकाम हो सकता है। अहिंसा की ही बात हम लें। जो अहिंसा का उपासक है, उसके लिये हिंसा तो वर्ज्य है, परन्तु यह सम्भव है कि ऊपर से अहिंसक होते हुए भी वह वास्तव में हिंसामय हो। क्योंकि हिंसा मन का एक धर्म है। महज बाहर से हिंसा कर्म न करने से ही मन अहिंसामय हो जायेगा सो बात नहीं। तलवार हाथ में लेने से हिंसा वृत्ति अवश्य प्रकट होती है, परन्तु तलवार छोड़ देने से मनुष्य अहिंसामय होता ही है सो बात नहीं। ठीक यही बात स्वधर्माचरण की है। निष्कामता के लिये पर धर्म से तो बचना ही होगा। परन्तु यह तो निष्कामता का आरम्भ मात्र हुआ। इससे हम साध्य तक नहीं पहुँच गये।

निष्कामता मन का धर्म है। इसकी उत्पत्ति के लिए एक स्वधर्माचरण रूपी साधन ही काफी नहीं है। दूसरे साधनों का भी सहारा लेना पड़ेगा। अकेली तेल-बत्ती से दिया नहीं जल जाता। उसके लिये ज्योति की जरूरत होती है। ज्योति होगी तो ही अंधेरा दूर होगा। यह ज्योति कैसे जगावें? इसके लिये मानसिक संशोधन की जरूरत है। आत्म-परीक्षण के द्वारा चित्त की मलिनता-कूड़ा-कचरा धो डालना चाहिये।

गीता में 'कर्म' शब्द 'स्वधर्म' के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। हमारा खाना, पीना, सोना ये कर्म ही हैं, परन्तु गीता के 'कर्म' शब्द से ये सब क्रियाएँ सूचित नहीं होती हैं। कर्म से वहाँ मतलब स्वधर्माचरण से है। परन्तु इस स्वधर्माचरण-रूपी कर्म को करके निष्कामता प्राप्त करने के लिये और भी एक वस्तु की सहायता जरूरी है, वह है काम व क्रोध को जीतना। चित्त जब तक गंगाजल की तरह निर्मल व प्रशान्त न हो जाये, तब तक निष्कामता नहीं आ सकती। इस तरह चित्त संशोधन के लिये जो-जो कर्म किये जायें, उन्हें गीता 'विकर्म'

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org